International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
Vol. 3, Issue 12, December 2016 Impact Factor- 5.414
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
© Associated Asia Research Foundation (AARF)
Website: www.aarf.asia Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

'प्राणायाम एवं उसके स्वास्थ्योन्नयक प्रभाव'

***शिवलाल सिंह यादव**
****रूचि श्रीवास्तव**
***** डॉ. राजेन्द्र प्रसाद**
* शोध छात्र–हिन्दी, काय चिकित्सा विभाग, आयुर्वेद संकाय, चि.वि.संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
** शोध छात्रा, काय चिकित्सा विभाग, आयुर्वेद संकाय, चि.वि.संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
*** एसोसिएट प्रोफेसर एवं शोध *निर्देशक*, काय चिकित्सा विभाग, आयुर्वेद संकाय, चि.वि.संस्थान, का.हि.वि.वि., वाराणसी।

सारांश

जीवन का मूलाधार प्राण उर्जा है। प्राण ही समस्त क्रियाओं एवं व्यापारों के मूल मे है। प्राण की महत्ता वैदिक साहित्य में ऋग्वेद से लेकर उपनिशदों तक विस्तृत रूप से प्राप्त होती है। वैदिक साहित्य में पाँच प्रकार के प्राण और पाँच उपप्राणों का उल्लेख प्राप्त होता है। प्राण के संवर्धन एवं नियंत्रण के लिए वैदिक साहित्य में प्राणायाम का प्रणयन प्राप्त होता है। वैदिकोत्तर साहित्य में प्राणायाम के विभिन्न प्रकारों एवं उनसे होने वाले लाभों का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। वैदिक एवं वैदिकोत्तर साहित्य में वर्णित प्राणायाम के महत्व एवं लाभों ने आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को इसके किया ाारीरिक लाभों का उद्घाटन करने हेतु अनुसंधान के लिए प्रेरित किया। इन अनुसंधान कार्यों ने प्राणायाम से होने वाले अनेक किया शारीरिक लाभों की पुश्टि की। आज भी विभिन्न प्राणायामों का विभिन्न रोगों के परिप्रेक्ष्य में होने वाले लाभों पर आज भी अनवरत अनुसंधान चल रहे है और नित नवीन जानकारियाँ उद्धाटित हो रही हैं।

मुख्य शब्दः प्राण, प्राणायाम, वैदिक एवं वैदिकोत्तर साहित्य, अनुसंधान, किया ाारीरिक।

वैदिक साहित्य में प्राण– प्राणायाम का शाब्दिक अर्थ 'प्राणस्य आयामः' अर्थात प्राण का आयाम (नियंत्रण) ही प्राणायाम है। हमारे सम्पूर्ण शरीर में घटित होने वाली समस्त क्रियाओं का प्राण से प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध अवश्य है। प्राण का मानव शरीर से संयोग ही जीवन है अर्थात प्राण ही जीवन का मूलाधार है। प्राण की इसी महत्ता के कारण वैदिक साहित्य में भी प्राण का विवेचन प्राप्त होता है। विश्व के प्राचीनतम् ग्रन्थों में शुमार ऋग्वेद में प्राण को औषधि, महौषधि एवं दैवी शक्तियों का संवाहक कहा गया है–

'आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।। (ऋग्वेद 10.137.3)

हे प्राण! तुम औषध बनकर हमें प्राप्त हो तथा जो अशुद्धि, विकार या रोग है, उनको दूर कर दो। हे प्राण! तुम विश्वभेषज तथा देवताओं के दूत अर्थात दिव्य भावों को प्रदान करने वाले हो।यजुर्वेद में एक मंत्र है–

'सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ।।

(यजुर्वेद 34.55)

यहाँ प्राणों की संज्ञा ऋषि लेते हुए बताया गया है कि सात ऋषि इस शरीर में प्रतिष्ठित है। प्रमाद–रहित रहकर सातों इसकी रक्षा में सावधान रहते हैं। सात बहिर्मुखी प्राण–धाराएँ या इन्द्रियाँ सोते समय सोने वाले के लोक में संहृत हो जाती हैं। उस समय भी स्वप्न रहित रहने वाले दो देव (प्राण और अपान) जागने वाले आत्मा के साथ स्थित रहकर जागते रहते हैं। अथर्ववेद में तो प्राणसूक्त के रूप में 26 मंत्रों के अन्तर्गत प्राण का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। अथर्ववेद में ही प्राण को प्रणाम करते हुए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को उसके वश में बताया गया है–

'प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। (अथर्ववेद 11.4.1)

ब्राह्मण ग्रन्थ– ब्राह्मण ग्रन्थों के अन्तर्गत शतपथ ब्राह्मण में प्राण को अमृत, अग्नि व प्रजापति कहा गया है–

'प्राणो अमृतं तद् हि अग्ने रूपम्' (शतपथ 10.2.6.18)

'प्राणः प्रजापतिः' (शतपथ 6.3.1.9)

गोपथ ब्राह्म में प्राण ही शरीर रूप में बसने के कारण पुरुष कहा जाता है'–

'प्राण एष स पुरि शेते। (गोपथ पू. 1.39)

जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण में भी शतपथ ब्राह्मण के समान अग्नि माना गया है–

'तदग्निर्वै प्राणः' (जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण 4.22.11)

आरण्यक– शांखायन आरण्यक में इन्द्र प्रतर्दन से कहते हैं–

'प्रणोऽस्मि प्रज्ञात्मा। तं मामायुरमृतमित्युपास्स्वाऽऽयुः प्राणः प्राणो वा आयुः यावदस्मिंछरीरे प्राणो वसति तावदायुः। प्राणेन हि एवास्मिन् लोकेऽमृतत्वमाप्नोति।'

(शांखायन आरण्यक 5.2)

अर्थात् 'मैं प्राण–रूप प्रज्ञा हूँ। मुझे आयु और अमृत जानकर उपासना करो। प्राण के रहने तक ही आयु रहती है। प्राण से ही इस लोक में अमृतत्व की प्राप्ति होती है जो चित्–शक्ति इस मर्त्यपिण्ड को उठाकर खड़ा कर देती है, अर्थात् जिसके कारण शक्ति संचार, दृष्टिगोचर होता है, वह प्राण ही है।

उपनिषद्– बृहदारण्यकोपनिषद में याज्ञवल्क्य ने देवो का निरुपण करते हुए अन्त में सब देवों में श्रेष्ठ एक देव के स्वरूप का व्याख्यान किया–

'कतम् एको देव इति? प्राण इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते।'(बृहदारण्यकोपनिषद् 3.9.9)

अर्थात यह एक देव कौन सा है? वह प्राण है। उसे ही ब्रह्म कहा जाता है।

प्रश्नोंपनिषद् में पिप्पलाद ऋषि ने बताया है–

'प्राणाग्नय एवास्मिन् ब्रह्मपुरे जागृति। (प्र.उप. 4.3)

अर्थात् प्राण की अग्नियाँ इस ब्रह्मनगरी रूपी शरीर में सदा जागरित रहती हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् में प्राण को वसु, रुद्र व आदित्य रूप माना गया है–

'प्राणा वाव वसवः।' (छां.उप. 3.16.1)

'प्राणा वाव रूद्राः। (छा.उप.3.16.3)

'प्राणा वाव आदित्याः। (छा.उप.3.16.5)

प्राण वसु है अर्थात जीवन को बसाने के आधार हैं। प्राण रोगों के लिए रुद्र है और प्राण जीवन को खण्डित होने से बचाने के लिए आदित्य है।

प्राण के प्रकार– हमारे सम्पूर्ण शरीर में जो प्राण अर्थात वायु स्थित है और अपने प्राकृत कर्मों के द्वारा सम्पूर्ण शरीर को अनुग्रह करता है, वह पाँच प्रकार होता है। शरीर में उसके नाम, स्थान और कार्य निम्नलिखित है–

1. प्राण– शरीर में कण्ठ से हृदय पर्यन्त जो वायु कार्य करता है, उसे 'प्राण' कहा जाता है।

कार्य– यह प्राण नासिका–मार्ग, कण्ठ, स्वर–तंत्र, वाक्–इन्द्रिय, अन्न–नलिका, श्वसन–तंत्र, फेफड़ों एवं हृदय को क्रियाशीलता तथा शक्ति प्रदान करता है।

2. अपान– नाभि से नीचे मूलाधार पर्यन्त रहने वाले प्राणवायु को 'अपान' कहते हैं।

कार्य– मल, मूत्र, आर्तव, शुक्र, अधोवायु, गर्भ का निःसारण इसी वायु के द्वारा होता है।

3. उदान– कण्ठ के ऊपर से सिर पर्यन्त जो प्राण कार्यशील रहता है, उसे 'उदान' कहते हैं।

कार्य– कण्ठ से ऊपर शरीर के समस्त अंगों नेत्र, नासिका एवं सम्पूर्ण मुखमण्डल को ऊर्जा और आभा प्रदान करता है। पिच्युटरी तथा पिनियल ग्रन्थि–सहित पूरे मस्तिष्क को यह 'उदान' प्राण क्रियाशीलता प्रदान करता है।

4. समान– हृदय के नीचे से नाभि पर्यन्त शरीर में क्रियाशील प्राणवायु को 'समान' कहते हैं।

कार्य– यकृत, आँत, प्लीहा एवं अग्नाशय–हित सम्पूर्ण पाचन–तंत्र की आन्तरिक कार्य–प्रणाली को नियंत्रित करता है।

5. व्यान– यह जीवनी प्राण–शक्ति पूरे शरीर में व्याप्त है।

कार्य– यह वायु शरीर की समस्त गतिविधियों को नियमित तथा नियंत्रित करता है। सभी अंगों, मांस–पेशियों, तंतुओं, सन्धियों एवं नाड़ियों का क्रियाशीलता, ऊर्जा एवं शक्ति यही 'व्यान प्राण' प्रदान करता है।

इन पाँच प्राणों के अतिरिक्त शरीर में 'देवदत्त', 'नाग', 'कृकल', 'कूर्म' एवं 'धनंजय' नामक पाँच उपप्राण हैं, जो क्रमशः छींकना, पलक झपकना, जंभाई लेना, खुजलाना, हिचकी लेना आदि क्रियाओं को संचालित करता है।

इस प्रकार वैदिक साहित्य में प्राण की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए प्राण को शुद्ध, स्वस्थ एवं निरोग रखने के लिए प्राणायाम का प्रणयन किया गया। प्राणायाम की महत्ता स्पष्ट करते हुए योग दर्शन में कहा गया है कि–

'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्, धारणासु च योग्यता मनसः। (योग दर्शन 2.52,53)

अर्थात प्राणायाम करने से मन पर पड़ा हुआ असत्, अविद्या एवं क्लेश–रूपी तमस् का आवरण क्षीण हो जाता है और परिशुद्ध हुए मन में धारणा (एकाग्रता) स्वतः होने लगती है। योगशास्त्र के अनुसार प्राणायाम योग का चतुर्थ सोपान है। महर्षि पातंजलि ने अष्टांग योग में यम, नियम और आसन के पश्चात प्राणायाम का परिगणन किया है। महर्षि पातंजलि ने योग दर्शन में प्राणायाम का लक्षण प्रतिपादित करते हुए कहा है–

'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः। (योग दर्शन 2/49)

अर्थात उस आसन की सिद्धि होने पर श्वास और प्रश्वास की गति का अवरुद्ध हो जाना ही प्राणायाम है। योगशास्त्र की दृष्टि से शरीर में व्याप्त वायु मात्र ही प्राण है। अर्थात वायु के लिए प्राण शब्द का प्रयोग किया गया है। शरीर में नासामार्ग के द्वारा जो प्राणवायु ग्रहण की जाती है वह 'श्वास' कहलाती है और जो वायु नासारन्ध्रों से बाहर निकाली जाती है, उसे 'प्रश्वास' या 'उच्छ्वास' कहते हैं।

प्राणायाम के भेदों को महर्षि पातंजलि ने इस प्रकार स्पष्ट किये हैं–

'वाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घ सूक्ष्मः (योगदर्शनम् 2/50)

अर्थात् (शरीर के) बाहर होने वाला वाह्य (रेचक), भीतर होने वाला आभ्यान्तर (पूरक) तथा (बाहर और भीतर) रूकने वाला स्तम्भवृत्ति (कुम्भक)– त्रिविध प्राणायाम देश, काल (समय) और संख्या के द्वारा परिक्षित होता हुआ दीर्घ और सूक्ष्म होता है।

वाह्य प्राणायाम– जहाँ पर श्वास छोड़ते हुए श्वास ग्रहण की गति का अवरोध होता है वह वाह्य या रेचक प्राणायाम है।

आभ्यान्तर प्राणायाम– जहाँ श्वास ग्रहण करते हुए श्वासनिःसारण की गति का अवरोध होता है, वह आभ्यान्तर या पूरक प्राणायाम कहलाता है।

स्तम्भवृत्ति– इसे कुम्भक प्राणायाम भी कहते हैं। इसमें श्वास ग्रहण एवं श्वास निःसारण दोनों ही गतियों का अवरोध होता है। यह दो प्रकार का होता है– सहित कुम्भक और केवल कुम्भक। सहित कुम्भक के भी दो प्रकार हैं– रेचकपूर्वक कुम्भक तथा पूरक पूर्वक कुम्भक। रेचकपूर्वक कुम्भक के अन्तर्गत नासामार्ग के द्वारा वायु का रेचन करके अपनी सामर्थ्य

के अनुसार अधिक से अधिक देर तक उसे बाहर रोके रखना रेचकपूर्वक कुम्भक कहलाता है जबकि नासामार्ग से वायु को आपूरित करने के पश्चात उसे अपने सामर्थ्य के अनुसार अधिक से अधिक देर तक शरीर के अन्दर धारण करना ही पूरक पूर्वक कुम्भक कहलाता है। केवल कुम्भक के अन्तर्गत रेचक व पूरक को छोड़कर सुखपूर्वक (अनायास) जो वायु का धारण होता है वह केवल कुम्भक कहलाता है।

उपरोक्त तीनों प्राणायाम देश या स्थान से परीक्षित किये जाते हैं। जैसे– रेचक में प्राण का स्थान या देश शरीर से बाहर होता है। समय से परीक्षित होने पर यह देखा जाता है कि इतने क्षणों तक यह प्रणायाम रहा। संख्या से परीक्षित करने के लिए संख्यापरिगणन मात्राओं से किया जाता है। साँस लेने और छोड़ने से उपलक्षित समय को 'मात्रा' कहते हैं।

- 12 मात्राओं से परिमित प्राणायाम का प्रथम उद्घात होता है।
- 24 मात्राओं वाले प्राणायाम से 'द्वितीय उद्घात' सिद्ध होता है।
- 36 मात्राओं वाले प्राणायाम से 'तृतीय उद्घात' सिद्ध होता है।

उद्घात– प्राणवायु का गतिविच्छेद होने पर शरीर के अन्दर अपानवायु प्रभावित होता है और वह नाभिमूल से ऊपर उठकर शिरोभाग से टकराता है। इसे ही उद्घात कहते हैं। यह उद्घात प्रायः 12 मात्राकाल में एक बार होता है।उद्घात की संख्या के आधार पर भी प्राणायाम के तीन भेद होते हैं–

(i) मृदु– एक उद्घात या 12 मात्रा वाले प्राणायाम को 'मृदु' कहते हैं।

(ii) मध्य– दो उद्घात या 24 मात्रा वाले प्राणायाम को 'मध्य' कहते हैं।

(iii) तीव्र– तीन उद्घात पर 36 मात्रा वाले प्राणायाम को 'तीव्र' कहते हैं।

हठयोग प्रदीपिका के अनुसार प्राणायाम के भेदों को इस प्रकार से समझा जा सकता है–

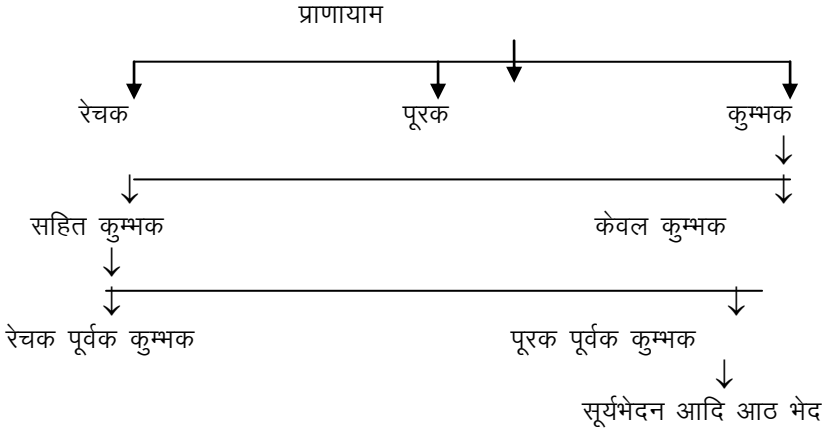

श्री स्वात्माराम योगीन्द्र ने पूरक पूर्वक कुम्भक प्राणायाम के आठ भेद बताये हैं–

'सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्टकुम्भकाः।। (हठयोग प्रदीपिका 2/44)

अर्थात सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा व प्लाविनी यह आठ प्रकार का कुम्भक प्राणायाम होता है।

सूर्यभेदन– स्वच्छ स्थान एवं समतल भूमि पर आसन बिछाकर स्वस्तिक आसन, विरासन या पद्मासन में योगी अपने दाहिने नासामार्ग जिसे सूर्य नाड़ी या पिंगला नाड़ी कहा जाता है के द्वारा धीरे–धीरे प्राणवायु को ग्रहण करे तत्पश्चात बाहर से ग्रहण की इस वायु को जितनी देर वह रोक सके उसे वह रोके। तदन्तर बायें नासामार्ग जिसे चन्द्रनाणि या इड़ा

नाड़ी कहलाती है के द्वारा धीरे–धीरे उस अवरुद्ध श्वास वायु को बाहर निकाले। इस प्रकार यह एक कुम्भक हुआ। इसे यथाशक्ति पुनः पुनः करना चाहिए।

उज्जायी– किसी भी आसन में सरलतापूर्वक बैठकर सर्वप्रथम फुफ्फुसों में स्थित सम्पूर्ण वायु का निष्कासन कर देना चाहिए तत्पश्चात मुख को संयमित करके इड़ा व पिंगला नाड़ियों से धीरे–धीरे प्राणवायु को अन्दर की ओर खींचना चाहिए। वायु को अंदर खींचते समय हल्की आवाज जैसी कि निद्रा के समय होती है निकलनी चाहिए। फुफ्फुसों में प्राणवायु भर जाने के बाद कुम्भक करना चाहिए तत्पश्चात इड़ा नाड़ी के द्वारा धीरे–धीरे उस प्राणवायु को बाहर निकालना चाहिए। प्राण वायु को बाहर निकालते समय भी हल्की आवाज कण्ठ से निकले ऐसा प्रयास करना चाहिए।

सीत्कारी– मुख में जिह्वा के द्वारा उसी प्रकार सीत्कार करते हुए पूरक करना चाहिए तत्पश्चात केवल नासामार्ग के द्वारा ही रेचन करना चाहिए। इस प्रकार इस अभ्यास को बारम्बार करना चाहिए

शीतली– होठों से बाहर निकली हुई जिह्वा से जो पक्षी की चोंच के समान हो वायु का आकर्षण करके कुम्भक का साधन कर नासिका मार्ग से शनैः शनैः उसका रेचन करना चाहिए।

भस्त्रिका– किसी सुखप्रद आसन में स्थित होकर सिर व मेरूदण्ड को सीधा रखकर शरीर को शिथिल करके बैठना चाहिए। दोनों नेत्र बंद हो, दाहिने हाथ को ऊपर उठाकर मुख के सम्मुख इस प्रकार रखा जाय कि उसकी प्रथम व द्वितीय अंगुली कपाल पर स्थित हो तथा अंगूठा नासिका के दाहिने नथुने पर और अनामिका अंगुली बायें नथुने पर स्थित हो। अब अंगुठे से दाहिना नथुना इस प्रकार दबाया जाय कि दक्षिण नासा मार्ग पूर्णतः बन्द हो जाय। तत्पश्चात बायें नथुने से शीघ्रतापूर्वक 20 बार श्वसन करना चाहिए, इसके बाद लम्बा पूरक करना चाहिए। तदन्तर दोनों नासा मार्ग दृढ़तापूर्वक अंगुष्ठ एवं अनामिका के द्वारा बंद कर कुंभक करना चाहिए। अन्त में शरीर को शिथिल करके रेचक करना चाहिए। इस प्रकार की तीन आवृत्तियों का अभ्यास आवश्यक है।

भ्रामरी– सुविधाजनक किसी आसन में बैठकर मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए नेत्र और मुख बंद रखते हुए कुम्भक का अभ्यास करना चाहिए। सर्वप्रथम दोनों नासामार्गों से वेगपूर्वक पूरक किया जाय तत्पश्चात् कुम्भक के द्वारा प्राणवायु का अवरोध किया जाय और अन्त में भ्रमर की भनभनाहट के समान सुदीर्घ अखण्ड ध्वनि करते हुए धीरे–धीरे रेचक किया जाय।

मूर्च्छा– सिद्धासन या पद्मासन में स्थित होकर शनैः शनैः श्वास लेकर उसे अन्दर ही रोक लेना चाहिए। तत्पश्चात् जालंधर बंध लगाते हुए दायें तथा बायें हाथ की अंगुलियों का प्रयोग करते हुए अंगूठे के साथ वाले दोनों अंगुलियों से आँखों के नीचे और ऊपर की पलकों को कोमलता से बंद कर तीसरी अंगुली से नाक के दोनों नथुने को दबाकर बंद कर लेना चाहिए। चौथी छोटी अंगुली से मुख के ओष्ठ को बंद कर श्वांस को अन्दर रोक कर मूलबन्ध और उड्डियान बंध लगाना चाहिए। असह्य स्थिति होने पर दोनों अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियाँ हटाकर रेचक करना चाहिए।

प्लाविनी– सर्वप्रथम पद्मासन में बैठकर पूरक करना चाहिए और अधिकाधिक प्राणवायु अन्दर भरकर उदर को फूला लेना चाहिए। पुनः रेचक के द्वारा शनैःशनै वायु बाहर निकालकर उदर को खाली कर देना चाहिए। इस प्रकार बार इस क्रिया की आवृत्ति करनी चाहिए।

हठयोग प्रदीपिका में वर्णित उपर्युक्त आठ प्राणायामों के अलावा कुछ अन्य प्रमुख प्राणायामों का उल्लेख भी मिलता है, जिनका वर्णन अग्रलिखित है–

(i) अनुलोम–विलोम प्राणायाम– दायें हाथ को उठाकर हाथ के अंगुष्ठ के द्वारा दायाँ स्वर (पिंगला नाड़ी) तथा अनामिका एवं मध्यमा अंगुलियों के द्वारा बायाँ स्वर बंद करना चाहिए। अनुलोम–विलोम प्राणायाम को बायीं नासिका से प्रारम्भ करते हैं। अंगुष्ठ के माध्यम से दाहिनी नासिका को बंद करके बायीं नासिका से श्वास धीरे–धीरे अन्दर भरना चाहिए। श्वास पूरा अन्दर भरने पर, अनामिका व मध्यमा से वाम स्वर को बंद करके दाहिने नासिका से पूरा श्वास छोड़ देना चाहिए। श्वास पूरा बाहर निकलने पर वाम स्वर को बंद रखते हुए ही दायीं नाक से श्वास पूरा भरकर बायीं नासिका से बाहर

छोड़ना चाहिए। यह एक प्रक्रिया पूरी हुई। इस प्रकार इस प्राणायाम को तीन मिनट से प्रारम्भ करके 10 मिनट तक किया जा सकता है।

(ii) उद्गीथ प्राणायाम– दोनों नासा–छिद्रों से 3 से 5 सेकेण्ड में श्वास को एक लय के साथ अन्दर भरना एवं ओइम् शब्द का विधिपूर्वक उच्चारण करते हुए लगभग 15 से 20 सेकेण्ड में श्वास को बाहर छोड़ना। इस प्रकार 3 मिनट में लगभग 7 बार उद्गीथ प्राणायाम अवश्य करना चाहिए।

(iii) चन्द्रभेदी प्राणायाम– इस प्राणायाम में बायीं नासिका से पूरक करके, अन्तः कुम्भक करें। तत्पश्चात् दायीं नासिका से रेचक करें। इसमें हमेशा चन्द्रस्वर से पूरक तथा सूर्यस्वर से रेचक करते हैं। यह सूर्यभेदी प्राणायाम के ठीक विपरीत है।

(iv) नाड़ी–शोधन प्राणायाम– अनुलोम–विलोम की भाँति दायीं नासिका को बंद करके बायीं नासिका से श्वास को धीरे–धीरे अन्दर भरना चाहिए। पूरक के पश्चात मूलबन्ध व जालंधर बंध लगाना चाहिए। यथाशक्ति रूकने के पश्चात जालंधर बंध हटाकर श्वास को अत्यन्त धीमी गति से दायीं नासिका से बाहर निकालकर वाह्य कुम्भक करना चाहिए। पुनः दायें स्वर से पूरक करके अन्तः कुम्भक करें। यथाशक्ति रूकने के पश्चात फिर बायें स्वर से रेचक करें। यह एक चक्र या एक अभ्यास पूर्ण हुआ। इसे एक चक्र से लेकर कम से कम तीन चक्र तक अवश्य करना चाहिए। नाड़ी शोधन प्राणायाम में क्रमशः पूरक, अन्तः कुम्भक, रेचक एवं बाह्य कुम्भक का अनुपात 1:4:2:2 का रखना चाहिए।

प्राणायाम में उपयोगी बन्ध

(i) जालन्धर बंध– पद्मासन या सिद्धासन में सीधे बैठकर पूरक करें, ठोड़ी को थोड़ा नीचे झुकाते हुए कण्ठकूप में लगायें दृष्टि भ्रूमध्य में एवं छाती आगे की ओर तनी हुई होगी।

(ii) उड्डीयान बंध– खड़े होकर दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखें, रेचक करते हुए पेट को ढीला छोड़े। जालंधर बन्ध लगाते हुए छाती को थोड़ा ऊपर उठाये और पेट को कमर से लगा दें। यथाशक्ति रूकने के बाद पुनः पूरक करके पूर्ववत् दुहरायें। पद्मासन एवं सिद्धासन में भी इसका अभ्यास करें।

(iii) मूलबन्ध– किसी भी ध्यानोपयोगी आसन में बैठकर वाह्य या आभ्यान्तर कुम्भक करते हुए गुदा एवं उपस्थ को ऊपर की ओर आकर्षित करें। इससे नाभि के नीचे वाला हिस्सा ऊपर खींच जायेगा। वाह्य कुम्भक के साथ इसे लगाने में सुविधा रहती है।

(iv) महाबन्ध– पद्मासन या किसी ध्यानोपयोगी आसन में बैठकर तीनों बंधों को एक साथ लगाना ही 'महाबंध' कहलाता है। वाह्य या आभ्यान्तर कुम्भक में ये तीनों बंध लगते हैं।

प्राणायाम के महत्त्व एवं लाभ

प्राण की मानव शरीर के लिए उपयोगिता एवं महत्ता को देखते हुए वैदिक एवं वैदिकोत्तर ग्रन्थों में इसके महात्म्य का विस्तृत विवेचन किया गया है। चूँकि प्राणायाम के माध्यम से प्राण का उन्नयन होता है इसलिए प्राणायाम के महत्व एवं इसके लाभ सम्बन्धी वर्णन भी वैदिकोत्तर ग्रन्थों में पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं–

प्राणायाम का महत्व प्रतिपादित करते हुए योगदर्शन में कहा गया है कि– 'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्, धारगासु च योग्यता मनसः।**(योगदर्शन 2.52,53)**

अर्थात प्राणायाम करने से मन पर पड़ा हुआ असत, अविद्या एवं क्लेश–रूपी तमस् का आवरण क्षीण हो जाता है और इस प्रकार परिशुद्ध हुए मन में धारणा अपने आप होने लगती है। मनु महाराज प्राणायाम के विषय में कहते हैं–

'दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथोन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।। (मनु 6.71)

जिस प्रकार अग्नि में तपाने से स्वर्ण आदि धातुओं के मल, विकार नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम से इन्द्रियों एवं मन के दोष दूर होते हैं। गीता में भी प्राणायाम के विषय में कहा गया है–

'गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्थ च। नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च।।

पवित्र ग्रंथ गीता के स्वाध्याय व प्राणायाम के नियमित अभ्यास से चित्त में संचित पूर्वजन्म की अशुभ वृत्तियों का नाश हो जाता है। योगचूड़ामण्युपनिषद् के अनुसार–

''आसनेन रूजं हन्ति प्राणायामेन पातकम् विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण सर्वदा।।'' (योग चूणामण्यूपनिषद् 109)।

अर्थात् आसन के माध्यम से योगी रोगों को, प्राणायाम के द्वारा पापवृत्ति को व प्रत्याहार के माध्यम से मानसिक विकार को दूर करता है। हठयोग प्रदीपिका में प्राणायाम के महत्व को बताते हुए कहा गया है– 'प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्ष्यो भवेत्। अयुक्ताभ्यास योगेन सर्वरोगस्य संभवः।। (हठयोग प्रदीपिका) अर्थात विधिपूर्वक किए हुए प्राणायाम से समस्त रोगों का नाश होता है जबकि विधि विरुद्ध प्राणायाम का अभ्यास समस्त रोगों का कारण बन सकता है। महर्षि अत्रि ने प्राणायाम को समस्त दोषों का नाशक बताया है–

'कर्मणा मनसा वाचा, ह्यह्ना पापं कृतंच यत्। आसीनः पश्चिमां सन्धयां प्राणायामैर्व्यपोहति।। अर्थात् मनुष्य दिन में मन, वचन व कर्म से जो पाप/दोष करता है, उसे सायंकाल संध्या में प्राणायाम करके दूर कर देता है। बृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृति में समस्त पापों के प्रायश्चित के लिए प्राणायाम करने को कहा गया है–

''प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
उपपातकजातीनामनादिण्टस्य चैव हि।।'' (बृह. 8.36)

अर्थात समस्त पापों के प्रायश्चित के रूप में 100 प्राणायाम करने चाहिए। इससे भविष्य में मन में पाप करने का संकल्प नहीं आता है। इसके अलावा जो उपपातक या छोटे पाप हैं, उनके लिए भी मनुष्य को 100 प्राणायाम करने चाहिए। इससे मानसिक शुद्धता की प्राप्ति होती है और मनुष्य भविष्य में पाप कर्मों से विमुख हो जाता है।

इस प्रकार वैदिक एवं वैदिकोत्तर धर्म ग्रन्थों में प्राणायाम के आध्यात्मिक लाभों पर विशेष प्रकाश डाला गया है और इसे मनसा, वाचा, कर्मणा पापों का मोचक बताया गया है। यह तो प्राणायाम का एक पक्ष हुआ, जबकि आधुनिक शोधों, प्रयोगों एवं अध्ययनों से यह साबित हुआ है कि प्राणायाम के आध्यात्मिक लाभ के साथ–साथ क्रिया शारीरिक एवं स्वास्थ्योन्नयक प्रभाव भी है।

प्राणायाम का श्वसन संस्थान से गहरा सम्बन्ध होने के कारण वर्तमान समय में कुछ लोग प्राणायाम को श्वसन सम्बन्धी व्यायाम मात्र मान लेते हैं। जो कि सही अवधारणा नही है। प्राणायाम के अभ्यास से केवल श्वसन–प्रक्रिया ही प्रभावित नही होती, अपितु इसका शरीर व मन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वप्रथम योग पर वैज्ञानिक अनुसंधान स्वामी कुवलयानन्द ने 1924ई. में लोनावाला में प्रारम्भ किया। रिले (1927) ने भी हठयोग के कुछ अप्रत्याशित प्रभावों पर आधारित रिपोर्ट प्रकाशित की। 1970–72ई. के बीच अमेरिका में वैलेंस एवं वेन्सन ने भावातीत ध्यान का अध्ययन किया और पाया कि भावातीत ध्यान के अभ्यास से ऑक्सीजन उपयोग, प्लाज्मा लैक्टेट स्तर, कार्डियक आउटपुट तथा रक्तचाप के स्तर में स्पष्ट घटाव आता है और साथ ही साथ साधक में अधिकाधिक शारीरिक एवं मानसिक विश्रान्ति तथा तनाव–शैथिल्य की स्थिति आती है। 1975 ई. में उडुपा, सिंह व शेट्टीवार ने अपने अध्ययन में 20–25 आयु वर्ग के कुछ स्वस्थ युवकों का चयन किया। इन युवकों को छः मास तक प्रतिदिन प्रातः सात मिनट उज्जयी तथा पाँच मिनट के अन्तर से दस मिनट तक भस्त्रिका प्राणायाम का अभ्यास कराया। सभी साधकों को समान आहार–विहार के साथ रखा गया। अभ्यास क्रम प्रारम्भ करने के पहले तथा प्रत्येक तीन महीने के बाद साधकों पर निम्नलिखित परीक्षण किये गये–

(i) शरीर भार (Body Weight) (ii) उदर आयाम (iii) वक्ष आयाम (iv) श्वासगति (v) श्वासनिरोध (vi) जीवनीय शक्ति (Vital Capacity) (vi) नाड़ी गति (Pulse Rate) (vii) रक्तचाप (Blood pressure) (ix) जीवरासायनिक अध्ययन (Biochemical Study) इत्यादि। इन परीक्षणों से ज्ञात हुआ कि प्राणायामाभ्यासी युवकों के शरीर भार में थोड़ी वृद्धि के साथ–साथ श्वासनिरोधक शक्ति में वृद्धि पायी गई तथा उनके रक्तचाप का भी नियमन होते देखा गया। जीव–रासायनिक अध्ययन में रक्तगत कार्टिसॉल की मात्रा बढ़ी हुई पायी गयी तथा मूत्र में भी कार्टिक्वाड्स की मात्रा अधिक रही। इसके विपरीत कटेकाल्मीन की मात्रा में कुछ कमी देखी गई। रक्त शर्करा (Blood sugar) तथा

रक्त वसा (Cholestrol) का भी क्षय होते देखा गया। शोध के अनुसार प्राणायाम की साधना से एड्रनिल कॉर्टेक्स (Adrinal Cartex) की कार्य क्षमता बढ़ जाती है, जो प्राणी में क्षोभशमित्व (stress endurance) शक्ति प्रदान करता है। **राजलक्ष्मी तथा अन्य ने 1980 ई.** में 92 युवक योग प्रशिक्षुओं में अध्ययन करके योग के हृदय एवं श्वसन–क्रिया सम्बन्धी प्रभाव का अध्ययन किया। बाद में इन्हीं शोधकर्त्ताओं ने भ्रामरी व भस्त्रिका प्राणायाम के मस्तिष्क तरंगों (EEG) पर प्रभाव का अध्ययन करके रिपोर्ट प्रस्तुत की कि इस प्रकार के अभ्यास से अल्फा तरंगों में बढ़ोत्तरी आती है। उन्होंने भस्त्रिका के अभ्यास से ऑक्सीजन उपयोग में प्रचुर बढ़ोत्तरी देखी।

मैती तथा सहयोगियों (1978–1979) ने भी 50 योगाभ्यासियों के अध्ययन के आधार पर प्रतिपादित किया कि योगाभ्यास हृदय व श्वसनतंत्र को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं और इन्हें मजबूती प्रदान करते हैं। **उडूपा एवं सिंह (1984)** ने अनेक रोगियों में योगाभ्यास द्वारा चिकित्सा का प्रयास किया और लगभग 1000 रोगियों को यौगिक चिकित्सा द्वारा उपचारित किया। यद्यपि इससे सभी रोगी लाभान्वित तो नही हुए परन्तु अधिकांश रोगियों में अच्छे परिणाम देखे गये। इन रोगियों को विभिन्न यौगिक क्रियाओं के साथ–साथ प्रत्येक रोग के लिए विशेष प्राणायाम भी कराये गये जैसे– उच्च रक्तचाप (Hypertension) में उज्जयी, शीतली एवं चन्द्रभेदी प्राणायाम; तमक श्वसन (Bronchial asthama) में उज्जयी, शीतली एवं भस्त्रिका प्राणायाम; मधुमेह (Diabetes) में भस्त्रिका एवं अग्निसार; जीर्ण उदर–विकार (Ch. GIT disorder) में शीतली, सीत्कारी एवं चन्द्रभेदी प्राणायाम; थायरोटाक्सिकोसिस (Thyrotoxicosis) में उज्जयी प्राणायाम तथा चित्तोद्वेग (Anxiety neurosis) में उज्जयी एवं भस्त्रिका प्राणायाम। **प्रमाणिक तापस व अन्य (2009)** ने मंद गति भस्त्रिका प्राणायाम का रक्तचाप व हृदय गति पर तात्कालिक अध्ययन किया । 25 से 40 वर्श के मध्य आयु वर्ग के स्वयंसेवकों को 5 मिनट 6 वास प्रति मिनट की दर से भस्त्रिका प्राणायाम कराया गया। परिणामस्वरूप सिस्टोलिक एवं डायास्टोलिक प्रे ार तथा हृदय गति में सार्थक कमी देखने को मिली। **भवनानी आनन्द बालयोगी व अन्य (2011)** ने सुख प्राणायाम का उच्च रक्तचाप (Hypertension) पर तात्कालिक प्रभाव का अध्ययन किया ओर पाया कि 5 मिनट 6 वास प्रति मिनट की दर से सुख प्राणायाम करने पर सिस्टोलिक प्रे ार में उच्च सार्थक कमी देखने को मिली जबकि डायास्टोलिक प्रे ार में सार्थक कमी नहीं देखने को मिली। **बोधे व अन्य (2015)** ने ''इन्टरनेशनल जनरल ऑफ बायोमेडिकल रिसर्च'' में छपे अपने शोध पत्र ''इफेक्ट ऑफ शार्ट टर्म प्राणायाम ऑन सरटेन कॉडियोवैस्कुलर रिस्क फैक्टरर्स'' में 60 स्वस्थ स्वयंसेवकों (30 पुरुष एवं 30 महिला) जिनकी आयु 17 से 20 वर्ष के मध्य थी, को लेकर 10 सप्ताह तक 45 मिनट प्रतिदिन नाड़ी शोधन, भस्त्रिका, अनुलोम–विलोम, सूर्यभेदी, भ्रामरी इत्यादि प्राणायाम का अभ्यास योग प्रशिक्षक के माध्यम से करवाया। 10 सप्ताह बाद परीक्षण करने पर इन स्वयंसेवकों की हृदय गति एवं सिस्टोलिक ब्लड प्रेशर में सार्थक कमी पायी गई।

इस प्रकार प्राणायाम के महत्व एवं लाभों का जो वर्णन प्राचीन ग्रंथों में प्राप्त होता है, उसकी पुष्टि आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के पैमाने पर भी होती है। प्राणायाम के क्रियाशारीरिक एवं स्वास्थ्योन्नयक प्रभाव से अब सामान्य जनमानस में भी पर्याप्त जागरूकता का प्रादुर्भाव हुआ है। यह योग की बढ़ती हुई लोकप्रियता ही है, जिससे प्रभावित होकर संयुक्त राष्ट्र संघ को भी वैश्विक स्वास्थ्य, सद्भाव एवं शांति के लिए वर्ष 2015 में 21 जून को 'अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस' घोषित करना पड़ा। तब से प्रत्येक 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया जाता है जो भारतवर्ष के लिए गौरव का प्रतीक है।

सन्दर्भ–

1. ऋग्वेद, सम्पादक : पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरेली (2016)।
2. अथर्ववेद, सम्पादक : पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरेली (2011)।
3. सहस्त्रयोगम्, डॉ. रामनिवास शर्मा, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

4. ईशादि नौ उपनिषद, व्याख्याकार : हरिकृष्ण दास गोयनका, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2072.
5. योग और आयुर्वेद, आचार्य राजकुमार जैन, चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली।
6. प्राणायाम रहस्य, स्वामी रामदेव, दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार (2008)।
7. सिंह, रामहर्ष, योग एवं यौगिक चिकित्सा, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली (2006)।
8. Rele, V.C. (1927) : The Mysterious Kundalini, pub. Taraporewala sons and company, Bombay.
9. Wallace, R.K. and Benson, H. (1972) : The Physiology of Meditation, Scientific American 226/2 : 84-90.
10. Udupa, K.N.; Singh, R.H. & Shettiwar, R.M. (1975) : Studies on the effect of some Yogic Breathing Exercises (Pranayamas) in normal persons, Indian Journal of Medicine and Research, vol. 63, No. 8, pp. 1962-1965.
11. Rajalakshmi (1980) : Effect of Bhramari and Bhastrika on the brain functioning and Physiological Activities, Mimeograph of the Indian Institute of Yoga and Allied Sciences, Tirupati.
12. Meti, B.L.; Rao, G.R.; Harinath, B.S. and Melkote, G.S. (1978-79) : Effect of Yoga Practices on Pulmonary Functions and Respiratory Functions and Respiratory Efficiency, Mimeograph of the Indian Institute of Yoga and Allied Sciences, Tirupati.
13. Udupa, K.N.; Singh, R.H.; Singh, M.B. and Shettiwar, R.M. (1978) : Further Studies on the combined practices of some Yogic Postures, Breathing Exercises and Relaxation, Jour. Res. Ind. Med. Yoga and Homeo 13/4 : 7-11.
14. Pramanik,Tapas;Sarma,Hariom;Misra,Suchita;Mishra,Anurag;Prajapati,Rajesh and Singh,Smriti (2009) : Immediate effect of slow pace Bhastrika Pranayamon on Blood Pressure and Heart Rate;The Journal of Alternative and Complemetary Medicine;Vol.15,No.3, pp 293-295.
15. Bhavanani,Ananda Balayogi;Sanjay,Zeena and Manmohan (2011) : Immediate effect of Sukha Pranayamon on Cardiovascular Variables of Hypertension; International Journal of Yoga Therapy,No.21,pp73-76.
16. Bhode, C.D.; Bhave, S.N. and Jankar, D.S. (2015) : Effects of short term Pranayama on certain cardiovascular risk factors, International Journal of Biomedical Research, ; 6(02), pp. 83-86.